

प्रवचन नं. १५

गाथा-१७-१८

बुधवार, दिनाङ्क ३०-०३-१९६६

चैत्र शुक्ला ८,

वीर संवत् २४९२

यह पूज्यपादस्वामी का इष्टोपदेश। १७वीं गाथा चलती है। देखो! यह शिष्य का प्रश्न है। शिष्य को जब समझाया, समझाये जाने से श्रद्धान उत्पन्न हो रहा है... ऐसा लिखा है। इसका शीर्षक। ऊपर २० गाथा तक बात की न? चिन्तामणि आदि आत्मा है, उसकी चिन्तवना में चिन्तामणि मिले तो वह कहीं खली के टुकड़े की इच्छा करे? वह भोगों को क्यों भोगे? - ऐसा प्रश्न आया है।

धर्मी उसे कहते हैं, धर्मी उसे कहते हैं कि जिसे आत्मा में ही अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव-वेदन हुआ है। समझ में आया? स्वयंसिद्ध आत्मा है। आत्मा इस देह से भिन्न चीज़ है। वह अनादि है, उसका कोई कर्ता नहीं है। स्वयंसिद्ध वस्तु है और वस्तु में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द पड़े हैं। स्वभाव, शक्ति उसके सत्व में (पड़े हैं)। ऐसा जिसे अनन्त काल में विषय और पुण्य-पाप में प्रेम था, पुण्य-पाप के भाव में रुचि थी, उसे उनके फल में भोग में रुचि थी; इसलिए वह तो मिथ्यादृष्टि भोग को प्रेम की रुचिपूर्वक भोगता है। समझ में आया? धर्मी को भोग की रुचि नहीं है, क्योंकि आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद सम्यग्दर्शन में, भान में आया होता है। सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा अखण्ड आनन्दकन्द प्रभु, पूर्ण स्वरूप की अन्तर्दृष्टि होकर अभेद स्वभाव की, एकरूप चैतन्य - ऐसा अनुभव में धर्मी को अतीन्द्रिय आनन्द जो शक्ति में है, उसकी व्यक्तता / प्रगटता आंशिक आनन्द आया है; इसलिए धर्मी को आत्मा में आनन्द के स्वाद के कारण, वह विषय-भोग को भोगता नहीं है - ऐसा यहाँ कहा। तब शिष्य का प्रश्न हुआ। समझ में आया?

(गाथा-१७) महाराज! तत्त्वज्ञानियों ने भोगों को न भोगा हो यह बात सुनने में नहीं आती है। आप कहते हो कि तत्त्वज्ञानी हो, वह भोग को नहीं भोगता। हम तो सुनते हैं कि तत्त्वज्ञानी हो, उसे स्त्री, पुत्र, परिवार और सब पड़ा होता है, भोग होते हैं - हम तो ऐसा शास्त्र में सुनते हैं। समझ में आया?

आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप—सत्-शाश्वत्, ज्ञान और आनन्द का स्वरूप, ऐसा स्वतन्त्र भान हुआ, ऐसे जीवों ने कहीं स्त्री, पुत्र छोड़ दिये और भोग छोड़े, ऐसा हम तो कुछ

सुनते नहीं। ऐ.. भट्टभाई! शिष्य का प्रश्न है। ऐसे भी संसार में तो हमने बहुत देखे हैं। चक्रवर्ती, तीर्थकर, राजा, महाराजा... समझ में आया या नहीं? क्यों तुम्हारे नहीं आये? ठीक। कहो, समझ में आया? आये, याद किया और आये।

यह आत्मा है, आत्मा। यह तो देह है, जड़ है, मिट्टी है। यह वाणी जड़ है और ये दूसरे स्त्री, पुत्र, परिवार आदि तो पर है। अब यह आत्मा जो है, वह अनादि का स्वरूप उसका ऐसा है कि अन्दर आनन्द और शान्ति आत्मा में है। वह शान्ति... कल दोपहर को आ गया या नहीं? सुख का सागर और सुख का पूर आत्मा है। आहा..हा..! समझ में आया? आत्मा में अन्तर नजर करने से... अनन्त काल से इसने अन्तर-नजर नहीं की। ऐसा आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा है। उसकी अन्तर नजर करने पर जो आत्मा का आनन्द तत्त्वज्ञानी को आया; तत्त्वज्ञानी; तत्त्व अर्थात् आत्मा, उसका ज्ञान और रागादि दुःखरूप, उसका ज्ञान। समझ में आया? रागादि दुःखरूप का ज्ञान; आत्मा आनन्दरूपी का ज्ञान। ऐसे तत्त्वज्ञानी भोग भोगते नहीं। ऐसा ऊपर आया न?

कौन बुद्धिमान इन्द्रियरूपी नलियों से अनुभवन करेगा? है न ऊपर? इन भोगोपभोगों को कौन बुद्धिमान इन्द्रियरूपी नलियों से अनुभवन करेगा? तब शिष्य कहता है कि तत्त्वज्ञानियों ने भोग न भोगे हों - यह बात सुनने को नहीं मिलती। बड़े-बड़े तत्त्वज्ञानियों ने भी भोगों को भोगा है,... बड़े-बड़े सम्यग्दृष्टि, क्षायिक समकिती, तीन ज्ञान के धनी तीर्थकर जैसे - उन्हें भी स्त्री, पुत्र और सब था, उन्हें भोग थे। ऐ.. पोपटभाई! शिष्य का प्रश्न है। यही प्रसिद्ध है। यह शास्त्र में प्रसिद्ध है। समझ में आया? ऐ.. ऐसे आओ, इस ओर जगह बहुत है। वे धूप में बैठे हैं। इस ओर बहुत जगह है। अन्दर जाओ, अन्दर।

शिष्य का क्या प्रश्न है, यह पहली बात चलती है कि तुम कहते हो कि तत्त्वज्ञानी कौन भोगे भोग को? जिसे आत्मा के आनन्द का भान हुआ, वह पर को कौन भोगे? हम तो सुनते हैं (कि) तत्त्वज्ञानी सब ऐसे के ऐसे भोग में पड़े थे। समझ में आया? यही प्रसिद्ध है। तब 'भोगों को कौन बुद्धिमान-तत्त्वज्ञानी सेवन करेगा?' यह उपदेश कैसे मान्य किया जाय? तत्त्वज्ञानी धर्मात्मा भोग को नहीं भोगता, यह बात हमें कैसे मान्य हो? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। इस बात पर कैसे श्रद्धान किया जाय? इस बात

पर हमें श्रद्धा किस प्रकार आवे ? हमें किस प्रकार भरोसा आवे कि तत्त्वज्ञानियों ने भोगों को भोगा नहीं ?

आचार्य जवाब देते हैं – कि हमने उपर्युक्त कथन के साथ ‘कामं अत्यर्थं’ यह शब्द लगाया है। है न मूल पाठ में ? ‘कामं कामान्’ १७ गाथा का मूल पाठ है न ? ‘कामं कामान् कः सेवते सुधीः’ भोगों को रुचिपूर्वक कैसे सेवन करता है ? समझ में आया ? मूल श्लोक है न ? ‘कामं कामान् कः सेवते सुधीः’ आचार्य कहते हैं कि हमने ‘कामं’ शब्द लगाया है। अज्ञानी आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का भान नहीं है। वह तो संसार के शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श में प्रीतिपूर्वक, रुचिपूर्वक, उल्लासपूर्वक, वीर्यपूर्वक, उत्साहपूर्वक इन भोगों को राग से – एकत्वबुद्धि से भोगता है।

धर्मी (कहते हैं), हमने शब्द लगाया था। ‘कामं’ आसक्ति के साथ रुचिपूर्वक यह भी विशेषण लगाया है। समझ में आया ? धर्मी को स्त्री, कुटुम्ब आदि हों, परिवार आदि हों, परन्तु उसे रुचि नहीं है, रुचि नहीं है; रुचि तो आत्मा के आनन्द में है। रुचि नहीं, परन्तु जरा आसक्ति का राग आता है, इससे संसार में भोग लेता है, ऐसा ज्ञात होता है। अन्तर रुचि नहीं है। समझ में आया ?

तात्पर्य यह है कि चारित्रमोह के उदय से भोगों को छोड़ने के लिये असमर्थ होते हुए.. जरा कमजोरी है न ! परिणाम में- भाव में आसक्ति के कारण राग में जरा कमजोरी है; इसलिए राग को छोड़ नहीं सकता। समझ में आया इसमें ? तत्त्वज्ञानी पुरुष भोगों को त्याज्य-छोड़ने योग्य समझते हुए ही सेवन करते हैं.. देखो ! रामचन्द्रजी जैसे पुरुष; चक्रवर्ती; बलदेव; भरत जैसे पुरुष। भरत चक्रवर्ती को छियानवें हजार स्त्रियाँ (रानियाँ) थीं, परन्तु अन्दर में... आहा..हा.. ! अरे ! हमारा आत्मा, हम अतीन्द्रिय आनन्द का सेवन करनेवाले, हम तो अतीन्द्रिय आनन्द, भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है; उसके प्रेम में उन्हें पर के विषय में प्रेम नहीं आता। समझ में आया ? यह रुचि में अन्तर है – ऐसा कहना है।

अज्ञानी वह के वह विषय भोगे अथवा छोड़े; ज्ञानी उन्हीं विषयों में पड़ा हो, तथापि उसे रुचि नहीं है। आहा..हा.. ! पकड़-पकड़ में अन्तर है। बिल्ली उसके बच्चे को

पकड़ती है। बिल्ली उसके बच्चे को पकड़ती है और चूहे को मुँह से पकड़ती है। दोनों में बहुत अन्तर है। चूहे को पकड़ती है तो दबाव से पकड़ती है और बच्चे को पकड़ती है तो पोचा-पोचा पकड़कर अन्यत्र ले जाती है। पकड़ तो दोनों में दिखती है। बिल्ली के मुँह में पकड़ तो उसके बच्चे की और चूहे की दोनों की दिखती है, परन्तु अन्दर (में) अन्तर है। एक चूहे को पकड़ा है तो ऐसे दबाव से (जोर से) पकड़ा है, खींचकर पकड़ा है और बच्चे को पकड़ा है तो ऐसे मुँह (रखती है), दाँत बाहर रह जाये और उसके मुँह को होंठ के बीच में दबाती है।

इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव (को) आत्मा के स्वभाव की आनन्द की दृष्टि की खबर नहीं। मैं एक सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ, ज्ञानानन्द की ज्योति हूँ-ऐसा जिसे आत्मा का भान नहीं; वह पुण्य को और विषय को भोगते हुए, जैसे वह बिल्ली चूहे को पकड़ती है, वैसे भोग में लीन हो जाता है। समझ में आया? आहा..हा..!

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कहा न? दिखे सरीखा, दिखे सरीखा, परन्तु भाव में अन्तर है या नहीं? वे हमारे बोलते थे। सात वर्ष की एक लड़की थी, बेचारी क्षयरोग में मर गयी। पोपटशाह थे, उनके लड़के की लड़की थी। 'पकड़-पकड़ में फेर'। लड़की यह बहुत बोलती थी। बहुत छोटी उम्र, सात वर्ष की थी। सात वर्ष में उसे क्षय (रोग) हो गया। मर गयी। अन्तिम स्थिति में देखी थी।... डालते, बेचारी पड़ी रहती। बहुत सुन्दर थी। सात वर्ष की। यह बहुत बोलती थी। ऐसे २५-५० बहुत सीखे हुए, बहुत सीखे हुए। दीया-बत्ती का नहीं आता? दीपक जलाओ कहा। डाला ज्वाला में। वह बोलती। दीपक सुलगाने का कहते हैं न? दीपक सुलगाओ। डाला ज्वाला में। परन्तु सुलगाने का अर्थ यह ज्वाला में नहीं होगा, सुलगाने का अर्थ दीपक में बत्ती कर, ऐसा होता है। सुलगाने का कहे वहाँ तू ऐसा कहे कि दीपक सुलगाओ, सुलगाओ अर्थात्? ज्वाला में डाला। दीपक को सुलगाओ अर्थात् वह दीपक है, उसे दियासलाई से प्रगटाओ, ऐसा उसका अर्थ है। सुलगाओ अर्थात् ऐसा अर्थ ले ले? उल्टा समझ बिना का। ऐसा शब्द था। अब भूल गये। पहले बहुत बोलता। (संवत्) १९८० के वर्ष में। १९८० के वर्ष में हमारा चातुर्मास था न? तब बहू बोलती। उसी-उसी में गुजर गयी। दीपक सुलगाओ कहा। समझाया समझे नहीं, करे

कुछ का कुछ, दीपक सुलगाओ कहा डाला ज्वाला माही। पोपटभाई शाह थे न उनका लड़का था न ? बड़ा लड़का उसकी लड़की थी। समझाया समझे नहीं, करे कुछ का कुछ, दीपक सुलगाओ कहा डाला ज्वाला माही।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि ज्ञानी यह भोग भोगते हैं न ? परन्तु सुन तो सही ! समझता नहीं कुछ। उन्हें अन्दर रुचि नहीं है, परन्तु राग का भाग जरा आसक्ति का आता है, उसे छोड़ने को समर्थ नहीं है, इससे वह भोग भोगता है, ऐसा तुझे दिखता है। अन्दर में रुचि नहीं है। आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है, आत्मा ज्ञानानन्द है, उसके स्वरूप में आनन्द का सरोवर है, शान्ति का सरोवर आत्मा है। वह आत्मा भगवान परमेश्वर ने ऐसा कहा और ऐसा देखा है। समझ में आया ? तीन लोक का नाथ परमेश्वर सर्वज्ञ ने ऐसा कहा, देखा और वैसा है। तू देख जरा अन्दर कि यह आत्मा देह, वाणी से पर, पुण्य-पाप के दया, दान, व्रत के भाव से भी पर, वह अलग चीज़ है। समझ में आया ? वह स्वयंसिद्ध तत्त्व है और स्वयंसिद्ध तत्त्व हो, वह दुःखरूप और अपूर्ण नहीं हो सकता। स्वतन्त्र वस्तु महान पदार्थ, आनन्द से भरपूर भण्डार है। उसकी जिसे रुचि और प्रेम नहीं है, वे सब भोग के काल में रुचि में फँसकर भोग भोगते हैं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

**चारित्रमोह के उदय से.. ज्ञानी.. अरे.. ! जहर है।** ज्ञानी को भोग की वृत्ति आवे तो उपसर्ग मानते हैं। समझ में आया ? उपसर्ग मानते हैं। आहाहा ! अरे ! हमारा आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की ज्योत जलहल जलती है, प्रभु ! ऐसी शान्ति में से निकलकर यह आसक्ति ? उसे दुःख लगता है, परन्तु पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण वह राग छोड़ नहीं सकता परन्तु उसका अन्तर प्रेम नहीं है। कहो, समझ में आया ? **चारित्रमोह के उदय से..** वह कोतवाल का आता है न ? गधे पर बैठना पड़ेगा। गधे पर बैठे, काला मुँह करे, उसे रुचता होगा ? परन्तु क्या करे ? जरा राग में पकड़ा गया है, इसलिए उसे कोतवाल कहता है, जा, बैठ गधे पर, निकाल बाहर, मुँह काला कर। इसी प्रकार धर्मी आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द की रुचि के स्वाद में, यह हटकर राग में आते हैं, वह मेल है, आसक्ति है, दुःख लगता है, जहर है परन्तु पुरुषार्थ की कमजोरी छोड़ नहीं सकते; इसलिए उस भोग को भोगते हैं, ऐसा दिखता है। समझ में आया ? आहाहा !

**भोगों को त्याज्य-छोड़ने योग्य समझते हुए.. भगवान आत्मा.. अहो ! जहाँ**

अन्तर्मुख दृष्टि जमी है, भगवान आत्मा अन्तर्मुख दृष्टि में जहाँ आनन्द और शान्ति देखी है, उसे कहते हैं कि वह भले गृहस्थाश्रम में हो, स्त्री, कुटुम्ब में हो, चक्रवर्ती तीर्थकर छियानवें-छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़े दिखायी दें, उन्हें रुचि नहीं थी। समझ में आया? आसक्ति थी। आसक्ति अलग और रुचि अलग। रुचि (अर्थात्) उसमें सुख है, ऐसा मानकर भोगना, उसका नाम रुचि है; और उसमें सुख नहीं है परन्तु छोड़ नहीं सकता, इसलिए जरा आसक्ति आती है, इसका नाम चारित्रदोष कहा जाता है। समझ में आया?

त्याज्य-छोड़ने योग्य समझते हुए ही सेवन करते हैं और जिसका मोहोदय मंद पड़ गया है,.. दूसरी बात लेते हैं। परन्तु धर्मात्मा... अहो! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद का अकेला सागर। ऐसा भान होने के बाद थोड़ी आसक्ति रही, वह भी जिसने टाल दी है। मोहोदय मंद पड़ गया... आसक्ति घटा दी है। वह ज्ञान-वैराग्य की भावना से इन्द्रियों को रोककर इन्द्रियों को वश में कर शीघ्र ही अपने (आत्म) कार्य करने के लिये कटिबद्ध-तैयार हो जाता है... समझ में आया? आहाहा!

दोनों बातों में बहुत अन्तर है। चक्रवर्ती छह खण्ड के राज्य में दिखायी दे, ऐसे हीरा के सिंहासन में बैठे हों, सिर पर अरबों रुपये के मुकुट और हीरा के हार हों, अन्तर में रुचि कहीं (नहीं है), कहीं रुचि जमती नहीं है। आत्मा के आनन्द के समक्ष रुचि के कारण उन्हें कहीं रुचता नहीं है, परन्तु सिर पर उपसर्ग आ पड़ा हो, ऐसा उन्हें देखते हैं। अरे! मेरा पुरुषार्थ मन्द है, मैं इन्हें छोड़ नहीं सकता मेरी इतनी आसक्ति है, मेरा दोष है, परन्तु यह चारित्रदोष है। सम्यग्दर्शन का दोष नहीं है। श्रद्धा में दोष नहीं है।

अज्ञानी को तो उसमें प्रेम, रुचि और सुखरूप लगते हैं। राग का भाग—पाप का और पुण्य का, जिसे सुखरूप लगता है, वह दृष्टि मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? नया पुण्य और पाप का भाव, हों! नया शुभाशुभभाव, वह ठीक और सुखरूप लगता है, (उसकी) दृष्टि मिथ्यात्व है, विपरीत अभिप्राय है। भगवान आत्मा में आनन्द और सुख है। उसकी जिसे खबर नहीं। समझ में आया? आहाहा! जिसका मोह मन्द पड़ गया अर्थात् पुरुषार्थ द्वारा जिसने आसक्ति को छोड़ा है, वह जीव तो अपना कार्य शीघ्र करने के लिये इन्द्रियों के विषयों की आसक्ति रोककर आत्मा का कार्य करने के लिये कटिबद्ध-

तैयार हो जाता है। ओहो! मुनिपना दिगम्बर सन्त! आत्मा के आनन्द में वनवासी हो जाते हैं। समझ में आया? परन्तु जो आसक्ति नहीं छोड़ सकते, वे गृहस्थाश्रम में भोग में दिखते हैं परन्तु उनकी सुखबुद्धि नहीं है, कहीं सुखबुद्धि नहीं है। मुर्दे को श्मशान में लकड़ियों का पॉलिस करके जलावे तो लकड़ियों को सुख नहीं है। मुर्दे को श्मशान में पॉलिस समझते हो? रंग लगाकर, पॉलिस करके लकड़ियाँ ठीक से (करके रखे), वह पॉलिस लकड़ियाँ होती हैं न? ऐई! मनुभाई! रंग किया हुआ, ऊपर पॉलिस लकड़ीवाला। फिर मुर्दे को जलावे तो मुर्दा प्रसन्न होता होगा? और कोई साढ़े तीन-तीन महीने बड़ा लोहा रखे तो नाराज होता होगा? इसी प्रकार जिसे आत्मा के आनन्द का-सम्यग्दर्शन का भान हुआ है, उसे वे अनुकूल संयोग, वह सब पॉलिस किये हुए लकड़ियाँ जैसे मुर्दे को सुख उत्पन्न नहीं करते, वैसे वे सुख नहीं उत्पन्न करते।

इसी प्रकार उस सम्यग्दृष्टि को प्रतिकूल संयोग, विघ्न इतने आवें—निर्धन हो, गरीब हो जाये, अविवाहित हो, बांझ हो, अकेला भी हो। धर्मी हो, इसलिए कहीं पैसेवाला और बाहर में सुखी हो, ऐसा है कुछ? ऐई! आत्मा का सम्यक्भान हुआ और बाहर में निर्धन हो। समझ में आया? उसके पास दूसरे लाखों, करोड़पति दिखते हों परन्तु जैसे तीन मण का बड़ा लोहा... क्या कहलाता है? काँटा, मुर्दे पर डालो तो मुर्दे को दुःख होता है? इसी प्रकार धर्मी को ऐसी प्रतिकूलता से दुःख लगता ही नहीं।

**मुमुक्षु :** उसमें तो जीव नहीं, इसलिए खबर नहीं...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह भान बिना का जड़ है, उसे भान नहीं, यह कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

धर्मी अर्थात् आत्मा के भान में है, उसे भले बाहर में निर्धनता तो, एकदम काला शरीर हो, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? समझ में आया? और प्रतिकूलता का पार न हो, रोटियाँ और छाछ मिलना कठिन पड़ता हो। मोहनभाई! ऐसा होता है या नहीं? अरे! रोटियाँ और छाछ मिलना मुश्किल पड़े, समकित्ती ऐसे कोई पड़े हों, आत्मा के ज्ञान में, (उन्हें) दुःख नहीं मानते। आनन्द है। रोटी आती है, खाते हैं, आनन्द है अन्दर।

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** किसका फल ? बाहर का या अन्दर का ? ऐई ! यह कहते हैं कि धर्मफल अर्थात् बाहर में कुछ पैसा-वैसा मिलना चाहिए न ?

**मुमुक्षु :** वह भी किसी को मिलते हैं ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु वे कहाँ इसके कारण हैं ? इसकी बात भी यहाँ कहाँ है ? धर्म और धर्म के फल में लक्ष्मी नहीं होती । धर्म के फल में अन्दर शान्ति होती है । धर्म के फल में लक्ष्मी-धूल मिले ? वह तो जरा पुण्य हो, राग पुण्य का हो तो वह मिले । धर्म में तो शान्ति मिलती है । आहाहा ! समझ में आया ? जैसे मुर्दे को बड़ी लकड़ियाँ.. रखे या पॉलिस से जलावे, दोनों में कुछ नहीं है ।

इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव गृहस्थाश्रम में हो, स्त्री हो... समझ में आया ? और घर में कोई गिनता न हो, कोई बुलाता न हो, आनन्द मानते होते हैं । ऐई ! हम आत्मा हैं, हमारे में आनन्द है । हमें किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं है । आहाहा ! समझ में आया ? और मूढ़ पूर्व के पुण्य के कारण लाखों और करोड़ों मिले हों, मूढ़ ! यह मेरे- (ऐसा) मानकर अन्दर राग करता है, वह मूढ़ पागल है, यहाँ तो ऐसा कहते हैं । आहाहा ! ऐ... मोहनभाई ! गजब बात, भाई ! वह (अज्ञानी) चतुर है । ऐसे निर्धन, काला कूबड़ा शरीर हो, अकेला हो । उसको एक महीने का पाँच-पाँच हजार का वेतन, दस-दस हजार का वेतन (होवे) । यहाँ (ज्ञानी को) हाथ में लटकता (हो) ओहो ! उसको तो रोटी के पाँच रुपये मिलना भी मुश्किल, हों ! पहला (अज्ञानी) अभी तो पाँच-पच्चीस न हो, पाँच रुपये तो गरीब व्यक्ति को मुश्किल पड़ते हैं । दो रुपये में खाते थे न पहले ? साठ वर्ष पहले... सुनते थे न ? विधवा महिला होती है, दो-ढाई रुपये बाँध देते । ऐ.. शिवलालभाई ! सुना है या नहीं ? हमने तो सुना था । यहाँ ७६ हुए न ! साठ वर्ष पहले उमराला में विधवा महिला हुई तो ढाई रुपये बाँध दे तो सब कहे ओहोहो ! महिला भाग्यशाली है । पाँच सौ रुपये हों पूरे... तरीके से, हों ! पाँच सौ । ढाई रुपये । बस ! उसे जवान मनुष्य को... बहुत हुआ । अभी तो ढाई की सब्जी भी हो ऐसा नहीं है, कठिनाई पड़े । उसमें उस समय सन्तोष था, ऐसा कहता हूँ । कुछ नहीं, अपने धर्मध्यान करेंगे । अपने निवृत्ति हुई । साढ़े पाँच सौ रुपये... क्या कहलाता है कोट । कोट कहलाता है । बनिया मरे फिर बाद में कोट में पाँच सौ रुपये आये, कहे । ऐई ! कालीदासभाई ! सुना है या नहीं ? यहाँ तो बहुत सब सुना और बहुत देखा है । पाँच सौ

अपने आये। आहाहा! साढ़े तीन सौ थे, और एक भाई ने डेढ़ सौ बढ़ा दिये, उसमें पाँच सौ आये। आहाहा! सन्तोष हो अन्दर, यदि धर्मी हो तो बात है। अज्ञानी होवे तो पाँच-पाँच हजार की आमदनी लड़के को हो तो चैन नहीं होती, मूढ़ को यह चाहिए और यह चाहिए और यह चाहिए।

यहाँ कहते हैं, धर्मी भोग भोगते हुए तुझे दिखायी देते हैं, वे रुचि बिना दिखते हैं, वह तुझे खबर नहीं पड़ती। आहाहा! और अज्ञानी भोग का त्यागी दिखायी दे परन्तु उसे पुण्य के परिणाम में प्रेम है, वह भोग का त्यागी नहीं है। समझ में आया? आहाहा! यह अन्तर? पूरब-पश्चिम का अन्तर है। कहो, पोपटभाई! धर्मी तो कटिबद्ध हो जाता है, कहते हैं। समझ में आया? तैयार हो जाता है... लो!

जैसा कि कहा गया है- 'इदं फलमियं क्रिया०'.. ज्ञानार्णव में ये श्लोक है। वहाँ उक्तं कहा है आधार है। पृष्ठ ७६ में है। कहो, समझ में आया? धर्मी जीव जिसे आत्मा के विवेक का भान है, वह तो यह फल है, उसका वह विद्वान विचार करता है। क्या? यह पुण्य और पाप का फल बन्ध है, दुःख है-ऐसा विचार करता है। मेरे आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान का फल शान्ति है, ऐसा वह विचार करता है। समझ में आया? यह धर्मी को विवेक होता है, ऐसा कहते हैं।

यह फल है,.. कि यह आत्मा ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप है, इसकी मैंने जो श्रद्धा-ज्ञान किये हैं, उसका फल मुझे शान्ति है। उसका फल मुझे समाधान-शान्ति है। जितना पुण्य-पाप का भाव होता है, उसका फल बन्धन है, वह दुःख है, ऐसा ज्ञानी-विवेकी धर्मी ऐसे विचार में-मन्थन में ऐसी क्रिया उसे होती है। समझ में आया? अज्ञानी को बेभान में कुछ खबर नहीं। पागल की भाँति खाना-पीना, भोगना और ऐसा का ऐसा चला जाता है।

यह क्रिया है,.. देखो! यह शरीर की जड़ की क्रिया है, ऐसा ज्ञानी जानता है। रागादि के परिणाम विभाव हैं, ऐसा जानता है और आत्मा शुद्ध श्रद्धा में जितना परिणामे, उतनी स्वाभाविक क्रिया है। ऐसा ज्ञानी जानता है। समझ में आया? आहाहा! तीन प्रकार की तीन क्रिया है। यह देहादि मिट्टी है, यह तो जड़ है। हिले-चले, वह उसकी जड़ की क्रिया है। अन्दर शुभ-अशुभ रागादि हो, वह विभाविक क्रिया है और आत्मा विभावरहित जितना स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान में एकाकार हुआ है, वह स्वाभाविक क्रिया है। उस क्रिया

को तत्त्वज्ञानी, विद्वान भलीभाँति जानता है। अज्ञानी को कौन सी क्रिया मेरी और कौन सी क्रिया तेरी, कौन सी विभाविक और कौन सी जड़ की, कौन सी आत्मा की-कुछ खबर नहीं। कहो, समझ में आया ?

**यह करण है,..** करण अर्थात् साधन। कहो, मेरे आत्मा का, मैं शुद्ध आत्मा पवित्र हूँ, उसका साधन मेरा स्वभाव शुद्ध, वह साधन है। समझ में आया ? और पुण्य आदि के परिणाम, वह व्यवहार निमित्तरूप से साधन कहे जाते हैं। वास्तव में वह बन्ध का साधन है, वह पुण्य का परिणाम होता है, परन्तु बन्ध का करण है। ऐसा धर्मी विद्वान, ज्ञानी भलीभाँति गृहस्थाश्रम में होने पर भी (जानता है)। समझ में आया ? हजारों रानियों के वृन्द में पड़ा होने पर भी उसका ऐसा विवेक होता है।

**यह क्रम-सिलसिला है,..** यह क्रम है कि पहले अनुभव-सम्यग्दर्शन होता है; पश्चात् राग की मन्दता करके व्रतादि के परिणाम होते हैं; पश्चात् मन्दता के परिणाम टलकर स्थिरता होती है - ऐसा क्रम है, उसे ज्ञानी भलीभाँति जानता है। अज्ञानी को क्रम की कुछ खबर नहीं है। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** अज्ञानी को सुनने के बाद तो खबर पड़नी चाहिए न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सुनने के बाद करे तो खबर पड़े तो खबर पड़नी चाहिए या न करे तो ? सुना किस काम का ? सुना वह तो कान में पड़ा। सुनकर समझे तो खबर पड़े न ? समझे बिना क्या खबर पड़े ? समझ में आया ? सुनते तो बहुत हैं परन्तु अन्दर आत्मा.. अहो ! एक स्वरूप प्रभु आत्मा विराजमान है, उसकी दृष्टि बिना कल्याण की शुरुआत कहीं तीन काल में नहीं है। ऐसी अन्तर्दृष्टि किये बिना इसे सम्यग्दर्शन साधन प्रगट नहीं होता। मुक्ति का साधन यह है, वह तो प्रगट नहीं होता। ज्ञानी जानता है कि उसका क्रम है। प्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, कहीं चारित्र एकसाथ प्रगट नहीं होता। यह कहा न ? तत्त्वज्ञानी भोग छोड़ नहीं सकते। वह आसक्ति है, उसमें क्रम जानते हैं। पहले आत्मा की दृष्टि हो, पश्चात् स्वरूप की स्थिरता हो, पश्चात् शुक्लध्यान हो और केवल (ज्ञान) हो। एकदम पहले धड़ाके सम्यग्दर्शन हो और भोग छोड़ दे, ऐसा नहीं हो सकता - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

यह खर्च है,.. यह खर्च होता है। इसमें मेरी थोड़ी शान्ति जाती है। इस पुण्यपरिणाम में राग विभाव होता है। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** .....खर्च का क्या काम है ? यहाँ तो घर का खर्च अन्दर की बात है। मेरा वीर्य विकार में इतना खर्च होता है और इतना स्वभाव में खर्च होता है, ऐसा उसे विवेक होता है।

**यह आनुषंगिक (ऊपरी) फल है,..** कहते हैं कि जहाँ आत्मा का धर्म हो, वहाँ थोड़ा पुण्य हो, उसका बन्ध-फल स्वर्गादि साथ में होता है। सौ कलथी अनाज हो, वहाँ सौ गाड़ा घास साथ में होता है। इसी प्रकार आत्मा का धर्म करनेवाला, आत्मा की शान्ति करे, उसे अभी थोड़ा पुण्यभाव होता है, उसका फल स्वर्गादि मिलता है, ऐसा धर्मी जानता है। समझ में आया ?

**यह मेरी अवस्था है,..** देखो! धर्मी जानता है कि यह मेरी दशा की यह अवस्था है। मैं तो सम्यग्दर्शनपूर्वक दशा को रख सकता हूँ या मैं पंचम गुणस्थान की दशा को रख सकता हूँ या मुनिदशा को मैं रख सकता हूँ। ऐसी अपनी दशा को वह जानता है। अज्ञानी को उस दशा की खबर नहीं है। समझ में आया ? भाई! धर्म अवश्य, परन्तु अभी मेरी दशा इस भोग के त्याग की मेरी दशा नहीं है। आसक्ति को मैं अभी नहीं छोड़ सकता। मुझमें आसक्ति है, समझ में आया ? उस मेरी अवस्था के प्रमाण में मुझे धर्म है परन्तु आसक्ति है, उसे मैं छोड़ नहीं सकता। उसकी अवस्था का ज्ञानी को भान होता है। देखो! अवस्था का भान होता है, ऐसा कहते हैं। अन्ध नहीं होता, ऐसा यह कहते हैं। कुछ खबर नहीं, कौन जाने हम कहाँ हैं, किस अवस्था में हैं ? ऐसा नहीं है। अवस्था कौन ? यह युवा, बाल और वृद्ध ? उसका क्या काम है ? वह तो जड़ है। मेरी वीतरागदृष्टि इतनी प्रगट हुई है, वीतरागता इतनी हुई है और राग इतना रहा है। ऐसी अवस्था का ज्ञानी को ख्याल होता है, विवेक होता है। अज्ञानी को उसका विवेक नहीं होता। कुछ खबर नहीं होती। अन्धे अन्ध कुटाय।

**यह मित्र है,..** देखो! देव, गुरु, शास्त्र आदि मित्र। बाकी विरोधी। यह शत्रु है,.. व्यवहार से जाने। वास्तव में आत्मा का स्वभाव मित्र; विकार, वह शत्रु। समझ में आया ?

बाहर का भी विवेक रखे, कौन प्रतिकूल है ? कौन अनुकूल ? उसका ख्याल होता है । ख्याल होता है, इतना हों ! इतना विवेक होता है । अन्दर में आत्मा पवित्रधाम शुद्ध चैतन्य, वह मेरा स्वभाव ही मेरा मित्र है और जितने विकारभाव होते हैं, वे मेरे शत्रु हैं ।

**मुमुक्षु :** अपने से भिन्न हो, उसे मित्र कहा जाता है या अपने ही अपने को मित्र कहा जाता है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** स्वयं अपना मित्र । और दूसरा कौन मित्र धूल में था ? ऐसे मरता हो ऐं.. ऐं.. करे, दूसरा मित्र हो, वह देखे, क्या करे इसे ? शाल डाले ।

**मुमुक्षु :** आश्वासन दे ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या आश्वासन दे ? वह सुन सके नहीं । कान में कुछ हो गया । बीस वर्ष का मरता हो, लो ! समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या करे परन्तु ? उसे भान में ऐसे-ऐसे डग-डग होता हो, हाय.. हाय.. ममता में । क्या सुनावे ? आहाहा ! हमारे पालेज में एक जवान लड़का था, बहुत जवान, पाटीदार, हों ! हमारी दुकान के साथ में । ऐसा जवान । दो जवानों को ऐसे खड़ा रखे, स्वयं बाईस वर्ष का परन्तु बाईस-बाईस वर्ष के दो जवानों को ऐसे हाथ में ऊँचा करके ऐसे घुमावे । ऐसी ताकत । उसे मरते हुए मैंने देखा, वहीं का वहीं, उसी मकान में । दुकान साथ में थी वहाँ । समझे न ? आहाहा ! विवाहित । पेटलाद का पाटीदार था । मरते हुए ऐसे.. देखने गये, आँखें ऐसे टक.. टक.. टक.. अन्दर में दुकान की ममता.. ममता.. ममता.. आहाहा ! रात्रि में निवृत्त होवें, फिर दुकान के नीचे खेले, बाईस वर्ष का था परन्तु बाईस-बाईस वर्ष के जवानों को ऐसे हाथ में ऊँचा करे ऐसे, हों ! पूरा ऊँचा करके दोनों को घुमावे । ऐसे और ऐसे घुमाता था, ऐसी शक्ति । वह मरने पड़ा तो आँखें ऐसे.. ऐसे.. मरने की तैयारी । अरे ! क्या हुआ यह ? ऐसा ही कोई रोग हो गया था । बुखार और कफ और... एकदम । जवान जोध मनुष्य, हों ! मर गया । साथ में पाँच गाँव है, गाँव है कुछ, नहीं ? नर्मदा निकली वह । चाँदोल ? वहाँ मुर्दे को जलाने ले गये । जवान, पाटीदार । धूल में परवस्तु कहाँ साधन है ? मित्र किसे कहना ? हम गये थे उसके पास । हम साथ में सब मित्र कहलाते थे । सुनने

को नहीं मिले। आँखें ऐसे फटती थी... टक.. टक.. अन्दर घिर गया। कौन मित्र ? बापू ! तेरा आत्मा.. करे वह तेरा मित्र है और विकारभाव वह शत्रु है, उसका ज्ञानी को विवेक होता है, अज्ञानी को भान नहीं है। दूसरे मित्र और शत्रु मानता है। धूल में भी कोई शत्रु-मित्र (नहीं है)।

यह देश है,.. समझ में आया ? यह देश है, अभी पाक ऐसा है, अमुक ऐसा है। स्वयं कहता है, देश, काल की योग्यता। तदनुसार स्वयं त्याग करता है, ऐसा कहते हैं। देश, काल को जानकर स्वयं समझकर त्याग करे। एकदम उतावला होकर छोड़ दे, ऐसा नहीं। यह देश है।

यह काल है,.. यह काल कैसा है ? जिसमें निर्दोष किस प्रकार से निभे ? किस प्रकार से हो ? यह सब विवेक करता है, ऐसा कहते हैं। देश, काल को देखे। ऐसे का ऐसा धुत होकर पड़े, ऐसा नहीं। यह कैसा काल है ? कैसी स्थिति है ? इस काल में कितना करने योग्य है ? यह सब उसे विवेक होता है।

इन सब बातों पर ख्याल देते हुए.. देखो ! बुद्धिमान पुरुष प्रयत्न किया करता है। सबका ख्याल रखकर वह प्रयत्न करता है। कहो, समझ में आया ? मूर्ख ऐसा नहीं करता। दो बातें ली हैं, लो ! मूर्ख ऐसा नहीं करता। समझ में आया ? 'प्रयतते बुधो नेतरः' है न ? पाठ में शब्द ही है। 'प्रतिवितर्कयन् प्रयतते बुधो नेतरः' इतर अर्थात् मूर्ख ऐसा नहीं करता। पाठ में है, हों ! 'नेतरः' अपने पाठ के शब्द हों तो ठीक रहे। आधार होवे न ! आहाहा ! इतर अर्थात् मूर्ख है, वह फल का विचार नहीं करता। क्रिया क्या ज्ञान की, राग की, पर की (क्रिया क्या) ? - इसका विचार नहीं करता। करण-साधन किसका ? अन्तर का, विकार का, इसका कुछ विचार नहीं करता। क्रम क्या पड़ता है ? पहले सम्यग्दर्शन हो, फिर चारित्र (होता है) यह तो एकदम ब्रत ले लेवे और फिर भान बिना निभ नहीं सके, ऐसे मूर्ख ऐसा करते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** उत्साह आ जाये तो जवानी में करे ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** किसका उत्साह ? धूल का ? उत्साह में आकर मनुष्य कुँ में कूद पड़ता है ? वहाँ विचार करता है। आहाहा ! वहाँ उत्साह में आकर एकदम कुँ में नहीं

गिरता। वह विचार करता है। खर्च का भी विचार करता है, हों! कितना खर्च होता है, कैसे है, कैसे नहीं, ऐसे बाहर में भी विचार विवेक रखता है। होवे पाँच हजार की पूँजी और खर्च डाले पाँच हजार, बहुत होशियार होकर दे दे पाँच हजार, जाओ। समझ में आया? वह विचार करे, मेरी शक्ति कितनी है? मैं कितना पहुँच सकता हूँ? मेरा काल क्या है? कैसे निभ सकूँगा? ऐसा विचार करे? समझ में आया? यह विचार मूर्ख नहीं करता। खर्च का विचार नहीं करता। आवे दस और जावे बारह। खर्च का विचार नहीं कि मैं पहुँच सकूँगा नहीं, हैरान हो जाऊँगा। समझ में आया? ऐसे आनुसांगिक फल क्या आयेगा? दुनिया शत्रु होगी या यह होगा या उसका फल... उसका विचार नहीं करता। मेरी अवस्था क्या है, उसका मूर्ख को भान नहीं है, शत्रु-मित्र का भान नहीं है, देश काल का भी भान मूर्ख को नहीं होता। लो!

दोहा - भोगार्जन दुःखद महा, भोगत तृष्णा बाढ़।  
अंत त्यजत गुरु कष्ट हो, को बुध भोगत गाढ़॥१७॥

भोगार्जन दुःखद महा,.. भोग के करने में तो बड़ा दुःख है। भोगत तृष्णा बाढ़। भोगते-भोगते तृष्णा बढ़ जाती है। अंत त्यजत गुरु कष्ट हो,.. छोड़ते हुए आसक्ति छूटती नहीं। भोग के शुरुआत में आताप, उसे भोगने में अतृप्ति और छोड़ने में आसक्ति छोड़ी नहीं जाती-छूटती नहीं। आसक्ति... आसक्ति... आसक्ति... ऐसी चीजों को... जाये। लोलुपता अन्दर रहा करती है। आहाहा! यह करना न आया होता और... आ जाये वह रुचता नहीं। ऐसा कहती है न दुनिया? आया पोसाये, आया हो, वह समाये। जाये, वह समाये नहीं, मूढ़, अब आवे-जावे कौन? सुन न अब समझ में आया? कहते हैं अंत त्यजत गुरु कष्ट हो,.. महाकष्ट हो। गुरु अर्थात् आसक्ति बहुत होती है, ऐसा। को बुध भोगत गाढ़। कौन ज्ञानी रुचिपूर्वक भोगेगा? कहते हैं, हों! गाढ़ अर्थात् —कौन रुचिपूर्वक भोग को और विषय को सेवन करेगा। आत्मा के आनन्द को छोड़कर उनमें रुचि कौन करेगा? कहो, समझ में आया? देखो! यह धर्म की रीति कहते हैं। भाई! यह शरीर, वाणी, मन की क्रियाएँ धर्म नहीं हैं। अन्दर के पुण्य-पाप के भाव हों, वह धर्म नहीं है। आत्मा शुद्ध चैतन्यप्रभु की अन्तर में दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता करे, वह धर्म है। वह धर्म आत्मा को मुक्ति देनेवाला है। इसके अतिरिक्त कोई मुक्ति को देनेवाला नहीं है। समझ में आया?

उत्थानिका - आचार्य फिर और भी कहते हैं कि जिस (काय) के लिये सब कुछ (भोगोपभोगादि) किया जाता है वह (काय) तो महा अपवित्र है, जैसा कि आगे बताया जाता है -

भवन्ति प्राप्य यत्संगमशुचीनि शुचीन्यपि।

स कायः संततापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा॥१८॥

अर्थ - जिसके सम्बन्ध को पाकर-जिसके साथ भिड़कर पवित्र भी पदार्थ अपवित्र हो जाते हैं, वह शरीर हमेशा अपायों, उपद्रवों, झंझटों, विघ्नों, एवं विनाशों कर सहित हैं, अतः उसको भोगोपभोगों को चाहना व्यर्थ है।

विशदार्थ - जिस शरीर के साथ सम्बन्ध करके पवित्र एवं रमणीक भोजन वस्त्र आदिक पदार्थ अपवित्र घिनावने हो जाते हैं, ऐसा वह शरीर हमेशा भूख प्यास आदि संतापोंकर सहित है। जब वह ऐसा है तब उसको पवित्र अच्छे-अच्छे पदार्थों से भला बनाने के लिये आकांक्षा करना व्यर्थ है, कारण कि किसी उपाय से यदि उसका एकाध अपाय दूर भी किया जाय तो क्षण-क्षण में दूसरे-दूसरे अपाय आ खड़े हो सकते हैं।

दोहा - शुचि पदार्थ भी संग ते, महा अशुचि हो जायँ।

विघ्न करण नित काय हित, भोगेच्छा विफलाय॥१८॥

गाथा - १८ पर प्रवचन

शिष्य वापिस प्रश्न करता है आचार्य फिर और भी कहते हैं.. आचार्य कहते हैं। जिस (काय) के लिये सब कुछ (भोगोपभोगादि) किया जाता है, वह (काय) तो महा अपवित्र है, जैसा कि आगे बताया जाता है - लो! दुनिया शरीर के लिये मथती है। धूल। कहीं का ढेर यहाँ आकर पड़ा, उसे रखने के लिये मथती है। आचार्य कहते हैं दुःखी... दुःखी अज्ञानी। यह रजकण का पिण्ड कहीं था जहर का, विष्टा का, कहीं का था, वह यहाँ आया है। यह शरीर.. शरीर। शरीर, यह बाल, यह हड्डियाँ, यह नाक सब परमाणु है, रजकण का पिण्ड है, पुद्गल का स्कन्ध... स्कन्ध-जत्था है। यह जत्था पहले कहीं

था। विष्टा में था, कोई तलवार में था, कोई हथियार में था, कोई सड़े हुए कुत्ते में था, कोई सड़ी हुई बिल्ली में था, सड़े हुए ऊँट में था, उस रजकण के स्कन्ध आकर यहाँ यह शरीर हुआ है। आहाहा!

भाई! तू तो अरूपी प्रभु भिन्न है न, बापू! यह तो रजकणों का पिण्ड बहुत बार किस प्रकार आकर पलट गये। ऐसे-ऐसे शरीर के तो अनन्त बार वमन किये और उसके जो रजकण के स्कन्ध वापस तेरे पास आये हैं। नदी के पानी के पूर देखने जाये और कहे, हमारे यहाँ पानी आया। हमारे कालूभार में बहुत पानी। गहरी बहुत है और लम्बी बहुत है। लड़के थे न तब देखने जाते थे। पानी.. पानी.. जाने न दे, बहुत छोटे थे न! गढ़ है न? गढ़ के अन्दर जाने न दे, बाहर खड़े रहना पानी बहुत आता है। तब तो बहुत आता था (संवत्) १९५७ में इतना पानी आता था। घोड़ापूर की बात नहीं की थी? घोड़ापूर... ऐसा, हों! घोड़ापूर, कालूभार नदी। जाने न दे। क्यों? बापू! तुम्हारा काम नहीं वहाँ। पानी का पूर खींच डालेगा। समझ में आया? शरीर की सम्हाल के लिये करते हैं।

यहाँ कहते हैं, ऐसा शरीर। देखो! इसमें से सड़ा हुआ हो, वह इकट्ठा होकर यह शरीर हुआ है, लो! आहाहा! कहीं के रजकणों का पिण्ड था, वह पिण्ड यहाँ आकर खड़ा रहा है। यह थोड़ी देर अवधि से रहेगा वहाँ, फू.. होकर चला जायेगा। भगवान आत्मा तो वह का वह है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ख्याल आवे, तब खबर पड़े कि....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ख्याल आवे तब खबर पड़े। आहाहा! उसके उस दुश्मन के रजकण शरीररूप आवे और उसके उस दुश्मन का आत्मा घर में पुत्ररूप से आवे। उस दुश्मन का आत्मा लड़का (होकर आवे) और उसके शरीर के रजकण जो बाहर थे, वे इस शरीर के ऊपर आवे, तो यहाँ प्रेम करने लगे। वह लड़का हो तो कहे मेरा लड़का। अरे.. अरे..! यह भ्रमणा तो देखो! पूर्व का लड़का हो, वह मरकर यहाँ शत्रु हो। वह का वह लड़का आगामी भव में शत्रु हो। यह तो परिवर्तन भिन्न-भिन्न है न! रजकण भिन्न हैं, आत्मा भिन्न है। आहाहा! यह नाटक का खेल।

इसे दरकार नहीं है। अरे! मैं त्रिकाली तत्त्व हूँ और यह संयोगी चीज तो एक समय

के सम्बन्ध में खड़ी है। सम्बन्ध में खड़ी है, अन्दर में तो आयी नहीं। मैं निरालम्बी निराधार पर के आश्रयरहित तत्त्व हूँ। मुझे किसी का आधार नहीं है। ऐसे आत्मा की श्रद्धा की इसे खबर नहीं पड़ती। भगवान आत्मा... समझ में आया? कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

दो वर्ष का लड़का हो और जरा रूपवान हो और भरा हुआ शरीर हो, फिर ऐसे पेट के ऊपर बटका भरे न? बक्की भरे ऐसे.. ऐसे..। उसके वे रजकण जहर जैसे थे, वह जहर होकर यहाँ आये हैं परन्तु कुछ भान नहीं न। आहा! बेटा! कोमल हाथ होवे तो वापस ऐसे करे, एक हाथ यहाँ डलावे एक हाथ यहाँ डलावे।

**मुमुक्षु :** हू-ब-हू वर्णन करते हो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु ऐसा करते हैं न? आहाहा! ऐसे बक्की भरकर फिर ऐसे-ऐसे करते हैं परन्तु क्या है? कुछ विवेक-खबर है? तू कौन? यह क्या? कुछ खबर है? यह तो जड़ के रजकण के पिण्ड तेरे शत्रु थे, वे आकर इस शरीररूप हुए हैं, सुन तो सही। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ऐसा करे तो प्रिय कब हो?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यही कहते हैं, प्रिय करनेयोग्य नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आत्मा, आत्मा पर प्रिय करनेयोग्य है, सच्चिदानन्दस्वरूप अनन्त आनन्द का कन्द नाथ तू है न! भाई! तीन लोक का नाथ कण-कण का भिखारी होकर घूमे, यह तुझे शोभा देता है? भाई! आहाहा! इन्द्रों के इन्द्रासन चिगाने आवे तो भी चलित न हो, ऐसी तेरी गति की जाति है, तू यह क्या करता है?

यहाँ कहते हैं, यह शरीर... समझ में आया? सब कुछ (भोगोपभोगादि) किया जाता है, वह (काय) तो महा अपवित्र है,.. शरीर की बात लगायी अब, दूसरी तो एक ओर रही।

भवन्ति प्राप्य यत्संगमशुचीनि शुचीन्यपि।

स कायः संततापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा॥१८॥

आहाहा! जिसके सम्बन्ध को पाकर-जिसके साथ भिड़कर पवित्र भी पदार्थ अपवित्र हो जाते हैं,.. भाई! तेरा स्वरूप तो अन्दर पवित्र है, हों! 'तेरी नजर के

आलसे रे ते निरख्या न नैयने हरि' वह हरि स्वयं पाप और पुण्य से रहित प्रभु तू स्वयं है हरि। हरि-बरि दूसरा कोई कर्ता-वर्ता नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा पवित्र प्रभु, उसके सामने यह अपवित्र का पिण्ड साथ में लेकर घूमना, तुझे शर्म नहीं आती? कहते हैं। उत्साह करे। गधा मर गया (और) हाथ से उठाकर चले तो? और इस मुर्दे को साथ में लेकर घूमे और उत्साह करे। मेरा शरीर है, अमुक है। गधे के मुर्दे को उठाते शर्म होती है और यह तो मनुष्य का मुर्दा। गधे के मुर्दे में से कुछ उसकी लाद भी निकले, यह तो इसकी लाद भी काम नहीं आती। उसकी लाद भी विष्टा होती है। समझ में आया? आहाहा!

आचार्य कहते हैं, इसके तीन प्रकार—एक तो उत्पत्ति अपवित्र। शरीर की उत्पत्ति खून और वीर्य से इसकी उत्पत्ति हुई। वर्तमान में हड्डियाँ, चमड़ा और खून - दो। और तीसरा, जो इसका संग करे, उसे अपवित्र बनाता है। चार सेर घी पिलाया हुआ मैसूर यहाँ डाले तो तुरन्त अपवित्र बनावे, ऐसा यह शरीर है। ऐसी मशीन जगत में कोई नहीं है। अपवित्र से उत्पन्न हुआ, अपवित्र स्वरूप स्वयं और जो इसका संग करे, उसे क्षण में अपवित्र बनावे। आहाहा! तू स्वयं पवित्रता का पिण्ड, उसकी एकाग्रता हो तो तुझे दशा में पवित्रता आवे और तू दुनिया को समझावे तो पवित्रता समझे, तो पवित्रता को तू निमित्त हो, ऐसा तू आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? कहीं का पिण्ड आकर कहीं आवे, वहाँ कहे -मेरा हो गया। यह जड़ वह मेरा, (यह) मान्यता मिथ्यात्व है, ऐसा बताते हैं। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि उस जड़ शरीर को अपना मानता है। आहाहा! गजब बात!

**मुमुक्षु :** वैराग्य कराने को कहते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वैराग्य कराने को (नहीं), सच में ही नहीं होता यह? भावभासन नहीं होता यहाँ? ऐसे सड़ता है तो गधा जैसा सड़ जाये। सड़े तब। आहाहा! एक बनिये को वहाँ देखा था। वावड़ी में। अन्दर गन्ध मारता था। गोपाणी था न? हम गये थे। गन्ध मारता था। गली में सामने घर है 'वावड़ी' ऐसा गन्ध मारे, ऐसा गन्ध मारे... उसकी बहू कहे मांगलिक सुनाओ। ऐसा गन्ध मारे। मांगलिक सुनाया। सड़ गया। महाराज आये हैं, हों! अपने नियम ले लेवें। तो कहे, अभी नहीं, अभी नहीं। रात्रि में मरना है। उपाश्रय छोटा था न? छोटा उपाश्रय था, उसके बाद आगे वहाँ हम उतरे थे। रात्रि में मर गया। गन्ध मारे, गन्ध मारे, गन्ध मारे, यह सब सड़ गया परन्तु इसमें न सड़े तो क्या? सबके सड़ते होंगे?

कहते हैं कि भाई! इस पवित्रता का नाथ आत्मा, वह ऐसी अपवित्रता का प्रेम-मित्रता कैसे की? ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? कहो, जैचन्दभाई! यह तो सब इसमें समझने जैसा आता है, हों! आहाहा! तेरी चीज़ है, वह तो अनन्त आनन्द और शान्ति से भरपूर पावर अन्दर है। जितना एकाग्र हो, उतना अन्दर से शान्ति का फब्बारा फूटेगा। ऐसा तू भगवान तीन लोक का नाथ प्रभु! तेरी क्या बात! कहते हैं। उसे इस पिण्ड के साथ रुचता है, तुझे कैसे रुचता है? आहाहा! रुचि छुड़ाते हैं, हों! फिर आसक्ति हो परन्तु पहले इसकी रुचि (छुड़ाते हैं)। शरीर ऐसा है। तू ऐसा और शरीर ऐसा। दोनों इकट्ठे कैसे रहे? रहते कैसे हैं? उसे तो मानो कोमल शरीर हो तो बटका भर लूँ। कर क्या लूँ इसमें? धूल में कुछ नहीं। पागलपने के गाँव अलग नहीं होते। हर गाँव में पागल (होते हैं)। आहाहा! समझ में आया?

जिसका सम्बन्ध पाकर, जिसके साथ भिड़कर, पवित्र परन्तु भिड़ते हैं न? मैसूर का टुकड़ा अच्छा हो, चार सेर घी पिलाया हुआ, उसे इसके साथ थोड़ी देर रखे तो? यह छाती अच्छी-अच्छी किया करता है न? ऐसी अच्छी-अच्छी। फिर ले खा। खाता नहीं और ले खा, पसीना छू गया। परन्तु तू कहता था तेरा शरीर अच्छा है। उसे छुआ है या नहीं? अच्छे घी का पिलाया हुआ फर्स्ट क्लास, हों! चार सेर घी पिलाया हुआ। उमराला में मैसूर बहुत बढ़िया होता है। चार सेर घी का पिलाया हुआ। वह होशियार हलवाई है न? नहीं तो बाहर ही रखे। छू गया, मुँह छू गया। परन्तु खाना है न? ऐसी शरीर की स्थिति तुझे दिखती है। उसे स्पर्श किया हुआ नहीं खाया जाता। वह ऐसा हो जाता है, तो भी कहता है, यह अच्छा मेरा।

**मुमुक्षु :** .....धर्म होता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी धर्म नहीं होता। कहो, समझ में आया?

वह शरीर हमेशा अपायों, उपद्रवों, झंझटों, विघ्नों, एवं विनाशों कर सहित हैं, अतः उसको भोगोपभोगों को चाहना व्यर्थ है। उसे भोग में, उसमें जड़ में क्या करना? आत्मा के आनन्द में देख न! कहते हैं। उसके साथ भोग भोगने की रुचि करना वृथा है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)